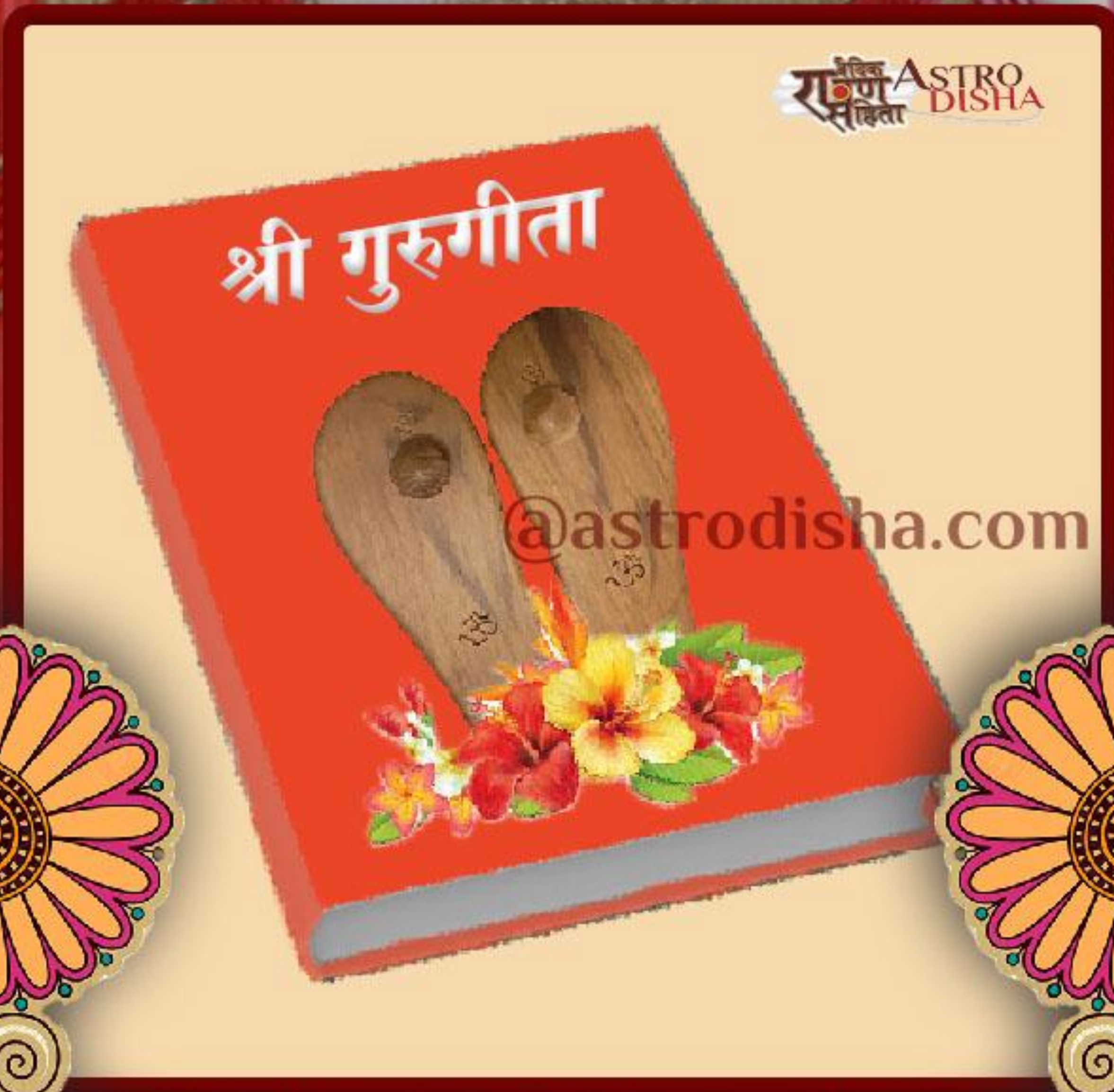

श्री गुरु गीता । शिव गीता

दूसरा अध्याय

पंडित सुनील वत्स
https://astrodisha.com
Whatsapp No: 7838813444
Facebook: https://www.facebook.com/AstroDishaPtSunilVats
YouTube Channel : https://www.youtube.com/c/astrodisha

Chapter 02

दूसरा अध्याय

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्
भावतीतं त्रिगुणरहितं सदगुरुं तं नमामि ॥

जो ब्रह्मानंदस्वरूप हैं, परम सुख देनेवाले हैं जो केवल ज्ञानस्वरूप हैं, (सुख, दुःख, शीत-उष्ण आदि) द्वन्द्वों से रहित हैं, आकाश के समान सूक्ष्म और सर्वव्यापक हैं, तत्वमसि आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ हैं, एक हैं, नित्य हैं, मलरहित हैं, अचल हैं, सर्व बुद्धियों के साक्षी हैं, भावना से परे हैं, सत्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित हैं ऐसे श्री सदगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ । (52)

गुरुपदिष्टमार्गेण मनः शिद्धिं तु कारयेत् ।
अनित्यं खण्डयेत्सर्वं यत्किंचिदात्मगोचरम् ॥

श्री गुरुदेव के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मन की शुद्धि करनी चाहिए । जो कुछ भी अनित्य वस्तु अपनी इन्द्रियों की विषय हो जायें उनका खण्डन (निराकरण) करना चाहिए । (53)

किमत्रं बहुनोक्तेन शास्त्रकोटिशतैरपि ।
दुर्लभा चित्तविश्रान्तिः विना गुरुकृपां पराम् ॥

यहाँ ज्यादा कहने से क्या लाभ ? श्री गुरुदेव की परम कृपा के बिना करोड़ों शास्त्रों से भी चित्त की विश्रांति दुर्लभ है । (54)

करुणाखड्गपातेन छित्त्वा पाशाष्टकं शिशोः ।
सम्यगानन्दजनकः सदगुरु सोऽभिधीयते ॥
एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दा करोति यः ।
स याति नरकान् घोरान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

करुणारूपी तलवार के प्रहार से शिष्य के आठों पाशों (संशय, दया, भय, संकोच, निन्दा, प्रतिष्ठा, कुलाभिमान और संपत्ति) को काटकर निर्मल आनंद देनेवाले को सदगुरु कहते हैं । ऐसा सुनने पर भी जो मनुष्य गुरुनिन्दा करता है, वह (मनुष्य) जब तक सूर्यचन्द्र का अस्तित्व रहता है तब तक घोर नरक में रहता है । (55, 56)

यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत् ।
गुरुलोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत् ॥

हे देवी ! देह कल्प के अन्त तक रहे तब तक श्री गुरुदेव का स्मरण करना चाहिए और आत्मज्ञानी होने के बाद भी (स्वच्छन्द अर्थात् स्वरूप का छन्द मिलने पर भी) शिष्य को गुरुदेव की शरण नहीं छोड़नी चाहिए । (57)

हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञशिष्यै कदाचन ।
गुरुराग्रे न वक्तव्यमसत्यं तु कदाचन ॥

श्री गुरुदेव के समक्ष प्रज्ञावान् शिष्य को कभी हुँकार शब्द से (मैने ऐसे किया... वैसा किया) नहीं बोलना चाहिए और कभी असत्य नहीं बोलना चाहिए । (58)

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुसान्निध्यभाषणः ।
अरण्ये निर्जले देशे संभवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥

गुरुदेव के समक्ष जो हुँकार शब्द से बोलता है अथवा गुरुदेव को तू कहकर जो बोलता है वह निर्जन मरुभूमि में ब्रह्मराक्षस होता है । (59)

अद्वैतं भावयेन्नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ।
कदाचिदपि नो कुर्याददद्वैतं गुरुसन्निधौ ॥

सदा और सर्व अवस्थाओं में अद्वैत की भावना करनी चाहिए परन्तु गुरुदेव के साथ अद्वैत की भावना कदापि नहीं करनी चाहिए । (60)

दृश्यविस्मृतिपर्यन्तं कुर्याद् गुरुपदार्चनम् ।
तादृशस्यैव कैवल्यं न च तद्व्यतिरेकिणः ॥

जब तक दृश्य प्रपंच की विस्मृति न हो जाय तब तक गुरुदेव के पावन चरणारविन्द की पूजा-अर्चना करनी चाहिए । ऐसा करनेवाले को ही कैवल्यपद की प्रप्ति होती है, इसके विपरीत करनेवाले को नहीं होती । (61)

पंडित अंशुल वत्स

अपि संपूर्णतत्त्वज्ञो गुरुत्यागी भवेद्दा ।
भवेत्येव हि तस्यान्तकाले विक्षेपमुत्कटम् ॥

संपूर्ण तत्त्वज्ञ भी यदि गुरु का त्याग कर दे तो मृत्यु के समय उसे महान् विक्षेप अवश्य हो जाता है । (62)

गुरौ सति स्वयं देवी परेषां तु कदाचन ।
उपदेशं न वै कुर्यात् तदा चेद्राक्षसो भवेत् ॥

हे देवी ! गुरु के रहने पर अपने आप कभी किसी को उपदेश नहीं देना चाहिए । इस प्रकार उपदेश देनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है । (63)

न गुरुराश्रमे कुर्यात् दुष्पानं परिसर्पणम् ।
दीक्षा व्याख्या प्रभुत्वादि गुरोराज्ञां न कारयेत् ॥

गुरु के आश्रम में नशा नहीं करना चाहिए, टहलना नहीं चाहिए । दीक्षा देना, व्याख्यान करना, प्रभुत्व दिखाना और गुरु को आज्ञा करना, ये सब निषिद्ध हैं । (64)

नोपाश्रमं च पर्यंकं न च पादप्रसारणम् ।
नांगभोगादिकं कुर्यान्न लीलामपरामपि ॥

गुरु के आश्रम में अपना छप्पर और पलंग नहीं बनाना चाहिए, (गुरुदेव के सम्मुख) पैर नहीं पसारना, शरीर के भोग नहीं भोगने चाहिए और अन्य लीलाएँ नहीं करनी चाहिए । (65)

गुरुणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत् ।
कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ दासवन्निवसेद् गुरौ ॥

गुरुओं की बात सच्ची हो या झूठी, परन्तु उसका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए । रात और दिन गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए उनके सान्निध्य में दास बन कर रहना चाहिए । (66)

अदत्तं न गुरोर्द्रव्यमुपभुंजीत कहिर्चित् ।
दत्तं च रंकवद् ग्राह्यं प्राणोप्येतेन लभ्यते ॥

जो द्रव्य गुरुदेव ने नहीं दिया हो उसका उपयोग कभी नहीं करना चाहिए । गुरुदेव के दिये हुए द्रव्य को भी गरीब की तरह ग्रहण करना चाहिए । उससे प्राण भी प्राप्त हो सकते हैं । (67)

पादुकासनशय्यादि गुरुणा यदभिष्टितम् ।
नमस्कुर्वीत तत्सर्वं पादाभ्यां न स्पृशेत् क्वचित् ॥

पादुका, आसन, बिस्तर आदि जो कुछ भी गुरुदेव के उपयोग में आते हों उन सर्व को नमस्कार करने चाहिए और उनको पैर से कभी नहीं छूना चाहिए । (68)

गच्छतः पृष्ठतो गच्छेत् गुरुच्छायां न लंघयेत् ।
नोल्बणं धारयेद्वेषं नालंकारास्ततोल्बणान् ॥

पंडित सुनील वत्स

चलते हुए गुरुदेव के पीछे चलना चाहिए, उनकी परछाईं का भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए । गुरुदेव के समक्ष कीमती वेशभूषा, आभूषण आदि धारण नहीं करने चाहिए । (69)

गुरुनिन्दाकरं दृष्ट्वा धावयेदथ वासयेत् ।
स्थानं वा तत्परित्याज्यं जिह्वाच्छेदाक्षमो यदि ॥

गुरुदेव की निन्दा करनेवाले को देखकर यदि उसकी जिह्वा काट डालने में समर्थ न हो तो उसे अपने स्थान से भगा देना चाहिए । यदि वह ठहरे तो स्वयं उस स्थान का परित्याग करना चाहिए । (70)

मुनिभिः पन्नगैर्वापि सुरैवा शापितो यदि ।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरुः संत्राति पार्वति ॥

हे पर्वती ! मुनियों पन्नगों और देवताओं के शाप से तथा यथा काल आये हुए मृत्यु के भय से भी शिष्य को गुरुदेव बचा सकते हैं । (71)

विजानन्ति महावाक्यं गुरोश्चरणसेवया ।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः ॥

गुरुदेव के श्रीचरणों की सेवा करके महावाक्य के अर्थ को जो समझते हैं वे ही सच्चे संन्यासी हैं, अन्य तो मात्र वेशधारी हैं । (72)

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम् ।
भासयन् ब्रह्मभावं च दीपो दीपान्तरं यथा ॥

गुरु वे हैं जो नित्य, निर्गुण, निराकार, परम ब्रह्म का बोध देते हुए, जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्ज्वलित करता है वैसे, शिष्य में ब्रह्मभाव को प्रकटाते हैं । (73)

गुरुप्रादतः स्वात्मन्यात्मारामनिरिक्षणात् ।
समता मुक्तिमर्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥

श्री गुरुदेव की कृपा से अपने भीतर ही आत्मानंद प्राप्त करके समता और मुक्ति के मार्ग द्वार शिष्य आत्मज्ञान को उपलब्ध होता है । (74)

स्फ़टिके स्फ़ाटिकं रूपं दर्पणे दर्पणो यथा ।
तथात्मनि चिदाकारमानन्दं सोऽहमित्युत ॥

जैसे स्फ़टिक मणि में स्फ़टिक मणि तथा दर्पण में दर्पण दिख सकता है उसी प्रकार आत्मा में जो चित् और आनंदमय दिखाई देता है वह मैं हूँ । (75)

अंगुष्ठमात्रं पुरुषं ध्यायेच्च चिन्मयं हृदि ।
तत्र स्फ़ुरति यो भावः श्रुणु तत्कथयामि ते ॥

हृदय में अंगुष्ठ मात्र परिणाम वाले चैतन्य पुरुष का ध्यान करना चाहिए । वहाँ जो भाव स्फ़ुरित होता है वह मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो । (76)

अजोऽहममरोऽहं च ह्यनादिनिधनोह्यहम् ।
अविकारश्चिदानन्दो ह्यणियान् महतो महान् ॥

मैं अजन्मा हूँ, मैं अमर हूँ, मेरा आदि नहीं है, मेरी मृत्यु नहीं है । मैं निर्विकार हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, मैं अणु से भी छोटा हूँ और महान् से भी महान् हूँ । (77)

अपूर्वमपरं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम् ।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ॥
अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम् ।
निःशब्दं तु विजानीयात्स्वाभावाद् ब्रह्म पर्वति ॥

हे पर्वती ! ब्रह्म को स्वभाव से ही अपूर्व (जिससे पूर्व कोई नहीं ऐसा), अद्वितीय, नित्य, ज्योतिस्वरूप, निरोग, निर्मल, परम आकाशस्वरूप, अचल, आनन्दस्वरूप, अविनाशी, अगम्य, अगोचर, नाम-रूप से रहित तथा निःशब्द जानना चाहिए । (78, 79)

यथा गन्धस्वभावत्वं कर्पूरकुसुमादिषु ।
शीतोष्णस्वभावत्वं तथा ब्रह्मणि शाश्वतम् ॥

जिस प्रकार कपूर, फ़ूल इत्यादि में गन्धत्व, (अग्नि में) उष्णता और (जल में) शीतलता स्वभाव से ही होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म में शश्वतता भी स्वभावसिद्ध है । (80)

यथा निजस्वभावेन कुंडलकटकादयः ।

सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम् ॥

जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि आभूषण स्वभाव से ही सुवर्ण हैं उसी प्रकार मैं स्वभाव से ही शाश्वत ब्रह्म हूँ । (81)

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित् ।
कीटो भृंग इव ध्यानात् यथा भवति तादृशः ॥

स्वयं वैसा होकर किसी-न-किसी स्थान में रहना । जैसे कीडा भ्रमर का चिन्तन करते-करते भ्रमर हो जाता है वैसे ही जीव ब्रह्म का धयान करते-करते ब्रह्मस्वरूप हो जाता है । (82)

गुरोर्ध्यानेनैव नित्यं देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
स्थितश्च यत्रकुत्रापि मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥

सदा गुरुदेव का ध्यान करने से जीव ब्रह्ममय हो जाता है । वह किसी भी स्थान में रहता हो फ़िर भी मुक्त ही है । इसमें कोई संशय नहीं है । (83)

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं यशः श्री समुदाहृतम् ।
षड्गुणैश्वर्ययुक्तो हि भगवान् श्री गुरुः प्रिये ॥

हे प्रिये ! भगवत्स्वरूप श्री गुरुदेव ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और मधुरवाणी, ये छः गुणरूप ऐश्वर्य से संपन्न होते हैं । (84)

गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम् ।
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो गुरोरन्यन्न विद्यते ॥

मनुष्य के लिए गुरु ही शिव हैं, गुरु ही देव हैं, गुरु ही बांधव हैं गुरु ही आत्मा हैं और गुरु ही जीव हैं । (सचमुच) गुरु के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है । (85)

एकाकी निस्पृहः शान्तः चिंतासूयादिवर्जितः ।
बाल्यभावेन यो भाति ब्रह्मज्ञानी स उच्यते ॥

अकेला, कामनारहित, शांत, चिन्तारहित, ईर्ष्यारहित और बालक की तरह जो शोभता है वह ब्रह्मज्ञानी कहलाता है । (86)

न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मंत्रयंत्रके ।
गुरोः प्रसादादन्यत्र सुखं नास्ति महीतले ॥

वेदों और शास्त्रों में सुख नहीं है, मंत्र और यंत्र में सुख नहीं है । इस पृथ्वी पर गुरुदेव के कृपाप्रसाद के सिवा अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं है । (87)

चावार्कवैष्णवमते सुखं प्रभाकरे न हि ।
गुरोः पादान्तिके यद्वत्सुखं वेदान्तसम्मतम् ॥

गुरुदेव के श्री चरणों में जो वेदान्तनिर्दिष्ट सुख है वह सुख न चावार्क मत में, न वैष्णव मत में और न प्रभाकर (सांखय) मत में है । (88)

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ॥

एकान्तवासी वीतराग मुनि को जो सुख मिलता है वह सुख न इन्द्र को और न चक्रवर्ती राजाओं को मिलता है । (89)

नित्यं ब्रह्मरसं पीत्वा तृप्तो यः परमात्मनि ।
इन्द्रं च मन्यते रंकं नृपाणां तत्र का कथा ॥

हमेशा ब्रह्मरस का पान करके जो परमात्मा में तृप्त हो गया है वह (मुनि) इन्द्र को भी गरीब मानता है तो राजाओं की तो बात ही क्या ? (90)

यतः परमकैवल्यं गुरुमार्गेण वै भवेत् ।
गुरुभक्तिरतिः कार्या सर्वदा मोक्षकांक्षिभिः ॥

मोक्ष की आकांक्षा करनेवालों को गुरुभक्ति खूब करनी चाहिए, क्योंकि गुरुदेव के द्वारा ही परम मोक्ष की प्राप्ति होती है । (91)

एक एवाद्वितीयोऽहं गुरुवाक्येन निश्चितः।
एवमभ्यास्ता नित्यं न सेव्यं वै वनान्तरम् ॥
अभ्यासान्निमिषणैव समाधिमधिगच्छति ।
आजन्मजनितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

गुरुदेव के वाक्य की सहायता से जिसने ऐसा निश्चय कर लिया है कि मैं एक और अद्वितीय हूँ और उसी अभ्यास में जो रत है उसके लिए अन्य वनवास

का सेवन आवश्यक नहीं है, क्योंकि अभ्यास से ही एक क्षण में समाधि लग जाती है और उसी क्षण इस जन्म तक के सब पाप नष्ट हो जाते हैं । (92, 93)

गुरुर्विष्णुः सत्त्वमयो राजसश्चतुराननः ।
तामसो रूद्ररूपेण सृजत्यवति हन्ति च ॥

गुरुदेव ही सत्वगुणी होकर विष्णुरूप से जगत का पालन करते हैं, रजोगुणी होकर ब्रह्मारूप से जगत का सर्जन करते हैं और तमोगुणी होकर शंकर रूप से जगत का संहार करते हैं । (94)

तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसंगविवर्जितः ।
एकाकी निःस्पृहः शान्तः स्थातव्यं तत्प्रसादतः ॥

उनका (गुरुदेव का) दर्शन पाकर, उनके कृपाप्रसाद से सर्व प्रकार की आसक्ति छोड़कर एकाकी, निःस्पृह और शान्त होकर रहना चाहिए । (95)

सर्वज्ञपदमित्याहुर्देही सर्वमयो भुवि ।
सदाऽनन्दः सदा शान्तो रमते यत्र कुत्रचित् ॥

जो जीव इस जगत में सर्वमय, आनंदमय और शान्त होकर सर्वत्र विचरता है उस जीव को सर्वज्ञ कहते हैं । (96)

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः ।
मुक्तस्य लक्षणं देवी तवाग्रे कथितं मया ॥

ऐसा पुरुष जहाँ रहता है वह स्थान पुण्यतीर्थ है । हे देवी ! तुम्हारे सामने मैंने मुक्त पुरूष का लक्षण कहा । (97)

यद्यप्यधीता निगमाः षडंगा आगमाः प्रिये ।
आध्यामादिनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ॥

हे प्रिये ! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़ ले, वेद के छः अंग पढ़ ले, आध्यात्मशास्त्र आदि अन्य सर्व शास्त्र पढ़ ले फ़िर भी गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता । (98)

शिवपूजारतो वापि विष्णुपूजारतोऽथवा ।
गुरुतत्वविहीनश्चेत्तत्सर्वं व्यर्थमेव हि ॥

शिवजी की पूजा में रत हो या विष्णु की पूजा में रत हो, परन्तु गुरुतत्व के ज्ञान से रहित हो तो वह सब व्यर्थ है । (99)

सर्वं स्यात्सफलं कर्म गुरुदीक्षाप्रभावतः ।
गुरुलाभात्सर्वलाभो गुरुहीनस्तु बालिशः ॥

गुरुदेव की दीक्षा के प्रभाव से सब कर्म सफल होते हैं । गुरुदेव की संप्राप्ति रूपी परम लाभ से अन्य सर्वलाभ मिलते हैं । जिसका गुरु नहीं वह मूर्ख है । (100)

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वसंगविवर्जितः ।
विहाय शास्त्रजालानि गुरुमेव समाश्रयेत् ॥

इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न से अनासक्त होकर , शास्त्र की मायाजाल छोड़कर गुरुदेव की ही शरण लेनी चाहिए । (101)

ज्ञानहीनो गुरुत्याज्यो मिथ्यावादी विडंबकः ।
स्वविश्रान्ति न जानाति परशान्तिं करोति किम् ॥

ज्ञानरहित, मिथ्या बोलनेवाले और दिखावट करनेवाले गुरु का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि जो अपनी ही शांति पाना नहीं जानता वह दूसरों को क्या शांति दे सकेगा । (102)

शिलायाः किं परं ज्ञानं शिलासंघप्रतारणे ।
स्वयं तर्तुं न जानाति परं निसतारेयेत्कथम् ॥

पत्थरों के समूह को तैराने का ज्ञान पत्थर में कहाँ से हो सकता है ? जो खुद तैरना नहीं जानता वह दूसरों को क्या तैरायेगा । (103)

न वन्दनीयास्ते कष्टं दर्शनाद् भ्रान्तिकारकः ।
वर्जयेतान् गुरुन् दूरे धीरानेव समाश्रयेत् ॥

जो गुरु अपने दर्शन से (दिखावे से) शिष्य को भ्रान्ति में ड़ालता है ऐसे गुरु को प्रणाम नहीं करना चाहिए । इतना ही नहीं दूर से ही उसका त्याग करना चाहिए । ऐसी स्थिति में धैर्यवान् गुरु का ही आश्रय लेना चाहिए । (104)

पाखण्डिनः पापरता नास्तिका भेदबुद्धयः ।
स्त्रीलम्पटा दुराचाराः कृतघ्ना बकवृतयः ॥
कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टाः निन्द्यतर्कैश्च वादिनः ।
कामिनः क्रोधिनश्चैव हिंस्राश्चंड़ाः शठस्तथा ॥
ज्ञानलुप्ता न कर्तव्या महापापास्तथा प्रिये ।
एभ्यो भिन्नो गुरुः सेव्य एकभक्त्या विचार्य च ॥

भेदबुद्धि उत्तन्न करनेवाले, स्त्रीलम्पट, दुराचारी, नमकहराम, बगुले की तरह ठगनेवाले, क्षमा रहित निन्दनीय तर्कों से वितंडावाद करनेवाले, कामी क्रोधी, हिंसक, उग्र, शठ तथा अज्ञानी और महापापी पुरुष को गुरु नहीं करना चाहिए । ऐसा विचार करके ऊपर दिये लक्षणों से भिन्न लक्षणोंवाले गुरु की एकनिष्ठ भक्ति से सेवा करनी चाहिए । (105, 106, 107)

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं धर्मसारं मयोदितम् ।
गुरुगीता समं स्तोत्रं नास्ति तत्वं गुरोः परम् ॥

गुरुगीता के समान अन्य कोई स्तोत्र नहीं है । गुरु के समान अन्य कोई तत्व नहीं है । समग्र धर्म का यह सार मैंने कहा है, यह सत्य है, सत्य है और बार-बार सत्य है । (108)

अनेन यद् भवेद् कार्यं तद्वदामि तव प्रिये ।
लोकोपकारकं देवि लौकिकं तु विवर्जयेत् ॥

हे प्रिये ! इस गुरुगीता का पाठ करने से जो कार्य सिद्ध होता है अब वह कहता हूँ । हे देवी ! लोगों के लिए यह उपकारक है । मात्र लौकिक का त्याग करना चाहिए । (109)

लौकिकाद्धर्मतो याति ज्ञानहीनो भवार्णवे ।
ज्ञानभावे च यत्सर्वं कर्म निष्कर्म शाम्यति ॥

जो कोई इसका उपयोग लौकिक कार्य के लिए करेगा वह ज्ञानहीन होकर संसाररूपी सागर में गिरेगा । ज्ञान भाव से जिस कर्म में इसका उपयोग किया जाएगा वह कर्म निष्कर्म में परिणत होकर शांत हो जाएगा । (110)

इमां तु भक्तिभावेन पठेद्वै शृणुयादपि ।
लिखित्वा यत्प्रसादेन तत्सर्वं फलमश्नुते ॥

भक्ति भाव से इस गुरुगीता का पाठ करने से, सुनने से और लिखने से वह (भक्त) सब फल भोगता है । (111)

गुरुगीतामिमां देवि हृदि नित्यं विभावय ।
महाव्याधिगतैदुःखैः सर्वदा प्रजपेन्मुदा ॥

हे देवी ! इस गुरुगीता को नित्य भावपूर्वक हृदय में धारण करो । महाव्याधिवाले दुःखी लोगों को सदा आनंद से इसका जप करना चाहिए । (112)

गुरुगीताक्षरैकैकं मंत्रराजमिदं प्रिये ।
अन्ये च विविधा मंत्राः कलां नार्हन्ति षोड्शीम् ॥

हे प्रिये ! गुरुगीता का एक-एक अक्षर मंत्रराज है । अन्य जो विविध मंत्र हैं वे इसका सोलहवाँ भाग भी नहीं । (113)

अनन्तफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु ।
सर्वपापहरा देवि सर्वदारिद्रयनाशिनी ॥

हे देवी ! गुरुगीता के जप से अनंत फल मिलता है । गुरुगीता सर्व पाप को हरने वाली और सर्व दारिद्रय का नाश करने वाली है । (114)

अकालमृत्युहंत्री च सर्वसंकटनाशिनी ।
यक्षराक्षसभूतादिचोरव्याघ्रविघातिनी ॥

गुरुगीता अकाल मृत्यु को रोकती है, सब संकटों का नाश करती है, यक्ष राक्षस, भूत, चोर और बाघ आदि का घात करती है । (115)

सर्वोपद्रवकुष्ठदिदुष्टदोषनिवारिणी ।
यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद् भवेत् ॥

गुरुगीता सब प्रकार के उपद्रवों, कुष्ठ और दुष्ट रोगों और दोषों का निवारण करनेवाली है । श्री गुरुदेव के सान्निध्य से जो फल मिलता है वह फल इस गुरुगीता का पाठ करने से मिलता है । (116)

पंडित सुनील वत्स

महाव्याधिहरा सर्वविभूतेः सिद्धिदा भवेत् ।
अथवा मोहने वश्ये स्वयमेव जपेत्सदा ॥

इस गुरुगीता का पाठ करने से महाव्याधि दूर होती है, सर्व ऐश्वर्य और सिद्धियों की प्राप्ति होती है । मोहन में अथवा वशीकरण में इसका पाठ स्वयं ही करना चाहिए । (117)

मोहनं सर्वभूतानां बन्धमोक्षकरं परम् ।
देवराज्ञां प्रियकरं राजानं वशमानयेत् ॥

इस गुरुगीता का पाठ करनेवाले पर सर्व प्राणी मोहित हो जाते हैं बन्धन में से परम मुक्ति मिलती है, देवराज इन्द्र को वह प्रिय होता है और राजा उसके वश होता है । (118)

मुखस्तम्भकरं चैव गुणाणां च विवर्धनम् ।
दुष्कर्मनाशनं चैव तथा सत्कर्मसिद्धिदम् ॥

इस गुरुगीता का पाठ शत्रु का मुख बन्द करनेवाला है, गुणों की वृद्धि करनेवाला है, दुष्कृत्यों का नाश करनेवाला और सत्कर्म में सिद्धि देनेवाला है । (119)

असिद्धं साधयेत्कार्यं नवग्रहभयापहम् ।
दुःस्वप्ननाशनं चैव सुस्वप्नफलदायकम् ॥

इसका पाठ असाध्य कार्यों की सिद्धि कराता है, नव ग्रहों का भय हरता है, दुःस्वप्न का नाश करता है और सुस्वप्न के फल की प्राप्ति कराता है । (120)

मोहशान्तिकरं चैव बन्धमोक्षकरं परम् ।
स्वरूपज्ञाननिलयं गीतशास्त्रमिदं शिवे ॥

हे शिवे ! यह गुरुगीतारूपी शास्त्र मोह को शान्त करनेवाला, बन्धन में से परम मुक्त करनेवाला और स्वरूपज्ञान का भण्डार है । (121)

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चयम् ।
नित्यं सौभाग्यदं पुण्यं तापत्रयकुलापहम् ॥

व्यक्ति जो-जो अभिलाषा करके इस गुरुगीता का पठन-चिन्तन करता है उसे वह निश्चय ही प्राप्त होता है । यह गुरुगीता नित्य सौभाग्य और पुण्य प्रदान करनेवाली तथा तीनों तापों (आधि-व्याधि-उपाधि) का शमन करनेवाली है । (122)

सर्वशान्तिकरं नित्यं तथा वन्ध्यासुपुत्रदम् ।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यस्य विवर्धनम् ॥

यह गुरुगीता सब प्रकार की शांति करनेवाली, वन्ध्या स्त्री को सुपुत्र देनेवाली, सधवा स्त्री के वैध्व्य का निवारण करनेवाली और सौभाग्य की वृद्धि करनेवाली है । (123)

आयुरारोग्मैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।
निष्कामजापी विधवा पठेन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥

यह गुरुगीता आयुष्य, आरोग्य, ऐश्वर्य और पुत्र-पौत्र की वृद्धि करनेवाली है । कोई विधवा निष्काम भाव से इसका जप-पाठ करे तो मोक्ष की प्राप्ति होती है । (124)

अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मनि ।
सर्वदुःखभयं विघ्नं नाश्येत्तापहारकम् ॥

यदि वह (विधवा) सकाम होकर जप करे तो अगले जन्म में उसको संताप हरनेवाल अवैध्व्य (सौभाग्य) प्राप्त होता है । उसके सब दुःख भय, विघ्न और संताप का नाश होता है । (125)

सर्वपापप्रशमनं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥

इस गुरुगीता का पाठ सब पापों का शमन करता है, धर्म, अर्थ, और मोक्ष की प्राप्ति कराता है । इसके पाठ से जो-जो आकांक्षा की जाती है वह अवश्य सिद्ध होती है । (126)

लिखित्वा पूजयेद्यस्तु मोक्षश्रियम्वाप्नुयात् ।
गुरुभक्तिर्विशेषेण जायते हृदि सर्वदा ॥

यदि कोई इस गुरुगीता को लिखकर उसकी पूजा करे तो उसे लक्ष्मी और मोक्ष की प्राप्ति होती है और विशेष कर उसके हृदय में सर्वदा गुरुभक्ति उत्पन्न होती रहती है । (127)

जपन्ति शाक्ताः सौराश्च गाणपत्याश्च वैष्णवाः ।
शैवाः पाशुपताः सर्वे सत्यं सत्यं न संशयः ॥

शक्ति के, सूर्य के, गणपति के, शिव के और पशुपति के मतवादी इसका (गुरुगीता का) पाठ करते हैं यह सत्य है, सत्य है इसमें कोई संदेह नहीं है । (128)

जपं हीनासनं कुर्वन् हीनकर्माफलप्रदम् ।
गुरुगीतां प्रयाणे वा संग्रामे रिपुसंकटे ॥
जपन् जयमवाप्नोति मरणे मुक्तिदायिका ।
सर्वकमाणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रे न संशयः ॥

बिना आसन किया हुआ जप नीच कर्म हो जाता है और निष्फल हो जाता है । यात्रा में, युद्ध में, शत्रुओं के उपद्रव में गुरुगीता का जप-पाठ करने से विजय मिलता है । मरणकाल में जप करने से मोक्ष मिलता है । गुरुपुत्र के (शिष्य के) सर्व कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें संदेह नहीं है । (129, 130)

गुरुमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा ।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रके ॥

जिसके मुख में गुरुमंत्र है उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं । दीक्षा के कारण शिष्य के सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं । (131)

भवमूलविनाशाय चाष्टपाशनिवृतये ।
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्वज्ञ कुरुते सदा ॥

सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति ।
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रपीठे चरन्ति च ॥

तत्वज्ञ पुरूष संसारूपी वृक्ष की जड़ नष्ट करने के लिए और आठों प्रकार के बन्धन (संशय, दया, भय, संकोच, निन्दा प्रतिष्ठा, कुलाभिमान और संपत्ति) की निवृत्ति करने के लिए गुरुगीता रूपी गंगा में सदा स्नान करते रहते हैं । स्वभाव से ही सर्वथा शुद्ध और पवित्र ऐसे वे महापुरूष जहाँ रहते हैं उस तीर्थ में देवता विचरण करते हैं । (132, 133)

आसनस्था शयाना वा गच्छन्तष्तिष्ठन्तोऽपि वा ।
अश्वरूढ़ा गजारूढ़ा सुषुप्ता जाग्रतोऽपि वा ॥
शुचिभूता ज्ञानवन्तो गुरुगीतां जपन्ति ये ।
तेषां दर्शनसंस्पर्शात् पुनर्जन्म न विद्यते ॥

आसन पर बैठे हुए या लेटे हुए, खड़े रहते या चलते हुए, हाथी या घोड़े पर सवार, जाग्रतवस्था में या सुषुप्तावस्था में , जो पवित्र ज्ञानवान् पुरूष इस गुरुगीता का जप-पाठ करते हैं उनके दर्शन और स्पर्श से पुनर्जन्म नहीं होता । (134, 135)

कुशदुर्वासने देवि ह्यासने शुभ्रकम्बले ।
उपविश्य ततो देवि जपेदेकाग्रमानसः ॥

हे देवी ! कुश और दुर्वा के आसन पर सफ़ेद कम्बल बिछाकर उसके ऊपर बैठकर एकाग्र मन से इसका (गुरुगीता का) जप करना चाहिए (136)

शुक्लं सर्वत्र वै प्रोक्तं वश्ये रक्तासनं प्रिये ।
पद्मासने जपेन्नित्यं शान्तिवश्यकरं परम् ॥

सामन्यतया सफ़ेद आसन उचित है परंतु वशीकरण में लाल आसन आवश्यक है । हे प्रिये ! शांति प्राप्ति के लिए या वशीकरण में नित्य पद्मासन में बैठकर जप करना चाहिए । (137)

वस्त्रासने च दारिद्रयं पाषाणे रोगसंभवः ।
मेदिन्यां दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम् ॥

कपड़े के आसन पर बैठकर जप करने से दारिद्रय आता है, पत्थर के आसन पर रोग, भूमि पर बैठकर जप करने से दुःख आता है और लकड़ी के आसन पर किये हुए जप निष्फल होते हैं । (138)

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिः मोक्षश्री व्याघ्रचर्मणि ।
कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले ॥

काले मृगचर्म और दर्भासन पर बैठकर जप करने से ज्ञानसिद्धि होती है, व्याग्रचर्म पर जप करने से मुक्ति प्राप्त होती है, परन्तु कम्बल के आसन पर सर्व सिद्धि प्राप्त होती है । (139)

आग्नेय्यां कर्षणं चैव वयव्यां शत्रुनाशनम् ।
नैरृत्यां दर्शनं चैव ईशान्यां ज्ञानमेव च ॥

अग्नि कोण की तरफ मुख करके जप-पाठ करने से आकर्षण, वायव्य कोण की तरफ़ शत्रुओं का नाश, नैर्ऋत्य कोण की तरफ दर्शन और ईशान कोण की तरफ मुख करके जप-पाठ करने से ज्ञान की प्रप्ति है । (140)

उदंमुखः शान्तिजाप्ये वश्ये पूर्वमुखतथा ।
याम्ये तु मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः ॥

उत्तर दिशा की ओर मुख करके पाठ करने से शांति, पूर्व दिशा की ओर वशीकरण, दक्षिण दिशा की ओर मारण सिद्ध होता है तथा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके जप-पाठ करने से धन प्राप्ति होती है । (141)

॥ इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे
श्री गुरुगीतायां द्वितीयोऽध्यायः ॥

सम्पूर्ण श्री गुरु गीता | शिव गीता

https://astrodisha.com/sampuran-shri-guru-gita-shiv-gita-download-free-pdf/

पंडित सुनील वत्स

पंडित सुनील वत्स

Website : https://astrodisha.com

Whatsapp No : +91- 7838813444

Contact No: +91-7838813 - 444 / 555 / 666 / 777

Facebook : https://www.facebook.com/AstroDishaPtSunilVats

YouTube Channel : https://www.youtube.com/c/astrodisha

पंडित सुनील वत्स